Indian J. Soc. & Pol. 05(02):69-76:2018 **ISSN: 2348-0084(PRINT)**
UGC List No. 47956 (Till May 2,2018) **ISSN: 2455-2127(ONLINE)**

विश्व लोकमत एवम् भारत–पाकिस्तान सम्बन्ध : सं0रा0अमरीका के विशेष सन्दर्भ में

धर्मेन्द्र प्रताप श्रीवास्तव[1a]
[a]प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान विभाग, श्री म0 रा0 दा0 स्ना0 महा0 भुड़कुड़ा गाजीपुर उ0प्र0,भारत

ABSTRACT

भारत–पाकिस्तान सम्बन्ध के सन्दर्भ में निरपेक्ष विश्व लोकमत का सर्वथा अभाव रहा है। इस सन्दर्भ में राष्ट्रों ने अपनी राष्ट्रीय नीतियों के आधार पर ही जनमत का निर्माण किया है। भारत, पाकिस्तान जब दो स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में उद्भूत हुए तो विश्व में 'पूंजीवाद' बनाम 'साम्यवाद' के वैचारिक संघर्ष (शीत युद्ध) का आगाज हो रहा था। सम्पूर्ण विश्व दो विरोधी गुटों में विभाजित हो गया था। विश्व की किसी घटना को 'साम्यवाद' और 'पूंजीवाद' के चश्में से देखा जाता था। जिसके कारण विश्व लोकमत भी दो विरोधी खेमों में विभाजित हो गया था। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में चीन की अपनी एक विशिष्ट भूमिका रही है, विशेषकर भारत–पाकिस्तान के संदर्भ में चीन ने सदैव ही अपने राष्ट्रीय हितों के अनुकूल जनमत तैयार करने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार स्पष्टतः भारत–पाकिस्तान सम्बन्ध पर लोकमत तीन रूपों में परिलक्षित हुआ है। विश्व जनमत के तीनों स्वरूप समय–समय पर भारत–पाकिस्तान सम्बन्ध में प्रभावित होते रहे हैं और इसने भारत–पाकिस्तान सम्बन्ध को प्रभावित भी किया है। इन तीनों स्वरूपों का अध्ययन करने के लिए अमेरिका, सोवियत संघ (रूस) तथा चीन के भारत–पाकिस्तान सम्बन्ध पर दृष्टिकोणों का अध्ययन करना समीचीन होगा। प्रस्तुत शोध पत्र में भारत पाकितस्तान सम्बन्ध को प्रभावित करने वाले अमरीकी दृष्टिकोण पर दृष्टिपात करने का प्रयास किया गया है।

***KEY WORDS:** विश्व लोकमत, अमरीका, भारत–पाक सम्बन्ध*

प्रस्तावना

विश्व लोकमत वह मत है–जो कि राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर लेता है। यह विभिन्न राष्ट्रों के मध्य कम से कम कुछ मूलभूत अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के सम्बन्ध में मतैक्य को स्वीकृत कर देता है। समस्त विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय शतरंज की बिसात पर जो कोई चाल इस मतैक्य द्वारा अस्वीकृत की जाती है उसके विरूद्ध यह मतैक्य स्वचालित प्रक्रियाओं से अपना अनुभव करा देता है। जब किसी राष्ट्र की सरकार एक निश्चित नीति की घोषणा करती है जो कि मानव मत का उल्लंघन करता है तो मानवता राष्ट्रीय सम्बन्धों की चिन्ता किये बिना उठ पड़ेगी। यही नहीं वह मानव मत का उल्लंघन करने वाली सरकार पर स्वचालित अनुशास्तियों के माध्यम से अपनी इच्छा का आरोप करने का कम से कम प्रयत्न तो करेगी ही। इस प्रकार वह सरकार फिर स्वयं को लगभग उसी स्थिति में पाती है जैसे कि एक व्यक्ति अथवा व्यक्तियों का समूह जिसने अपने राष्ट्रीय समाज अथवा उसके उप विभागों में किसी एक लोक नीतियों की अवज्ञा की है। समाज या तो उसको अपने मानकों के अनुरूप बनने के लिए विवश कर देगा अथवा अनुरूपता के अभाव में उसका निष्कासन कर देगा।''(मारगेन्थाऊ,1967 पृ0314) यदि 'विश्व लोकमत' के सामान्य सन्दर्भों का ऐसा अर्थ है, तो हम कह सकते है कि आज–कल विश्व लोकमत का अस्तित्व ही नहीं है। वास्तव में आधुनिक इतिहास में लोकमत की स्वचालित प्रतिक्रिया के द्वारा किसी सरकार के अपनी विदेश नीति से रुकने के किसी दृष्टांत का अभिलेख नहीं मिलता है। 'वास्तव में अब विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय मामलों से सम्बन्धित लोकमत, राष्ट्रीय नीतियों तथा राष्ट्रीय अभिकरणों के द्वारा ढाला जाता है' और यह अभिकरण नैतिकता की अपनी धारणाओं के लिए अधिराष्ट्रीय अथवा सार्वभौमिक मान्यता का दावा करते हैं। इसी कारण वर्तमान विश्व में निरपेक्ष विश्व लोकमत का प्रतिबिम्ब भी दिखायी नहीं देता।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में संयुक्त राज्य अमरीका की रूचि का प्रारंभ

अमेरिका एक ऐसा देश है, जिसकी प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में कोई विशेष रूचि नहीं थी। वह प्रकृति प्रदत्त संसाधनों, मानवश्रम और उन्नत वैज्ञानिक तकनीक के द्वारा स्वतंत्र विकास के पथ पर अग्रसर था। उसने पहली बार प्रथम विश्व युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अपनी रूचि दिखायी। अमेरिकी राष्ट्रपति बुडरों विल्सन शान्ति संधियों के सूत्रधार बने और उन्हीं की आकांक्षा के अनुरूप राष्ट्र संघ का गठन सम्पन्न हुआ। यद्यपि विल्सन की इस कार्यवाही को अमेरिकी कांग्रेस का विश्वास प्राप्त न हो सका तदपि विल्सन की इस रूचि ने यह स्पष्ट करा दिया कि भावी अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं पर अमेरिकी मत को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरिका ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के क्षेत्र में यथार्थवादी विदेश नीति का आदर्श प्रतिमान प्रस्तुत किया। यूं तो 'राष्ट्रीय हित' किसी भी देश की विदेश नीति के आधार होते है परन्तु इन्हें जिस प्रकार से अमेरिकी विदेश नीति में अभिव्यक्ति मिली, उतनी अन्य किसी भी देश की विदेश नीति में प्राप्त नहीं

1: Corresponding Author

होती। उसने इसी दृष्टिकोण से विश्व की किसी भी घटना को देखा तद्नुरूप विश्व लोकमत तैयार करने का प्रयास किया।

भारतीय उपमहाद्वीप और अमरीका

1942 में पहली बार अमेरिका को यह आभास हुआ कि उसके रणनीतिक हित के बिन्दु भारतीय उपमहाद्वीप में भी निहित है। इसलिए अमेरिकियों ने भारतीय स्वाधीनता संघर्ष के समर्थन में 'लोकमत' का निर्माण किया। ब्रिटेन का मित्र होने के बावजूद अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का समर्थन कर भारतीयों के प्रशंसा के पात्र बने और भारत में अमेरिका को शुभचिंतक राष्ट्र के रूप में माना जाने लगा, परन्तु यह स्थिति बहुत दिनों तक कायम न रह सकी। 1942 के गर्मियों में ही भारतीय राष्ट्रवादियों ने द्वितीय विश्व युद्ध में मित्र राष्ट्रों का समर्थन करने के बजाय जेल जाना पसन्द किया तथा भारतीय स्वाधीनता संग्राम के क्रान्तिकारी महानायक सुभाष चन्द्रबोस ने धुरी राष्ट्रों का समर्थन कर दिया। निश्चय ही यह घटना अमेरिकी राष्ट्रीय हितों के अनुकूल न थी इसलिए अमेरिकी जनमानस में इसके विरूद्ध प्रतिक्रिया हुई, परिणामतः भारत के पक्ष में निर्मित अमेरिकी लोकमत विखण्डित हो गया और भारत के विरूद्ध अमेरिकी लोकमत का निर्माण हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की परिस्थितियों में अमेरिकी जनमत इस बात के पक्ष में था, कि दक्षिण एशिया में अपना प्रभुत्व बढ़ाया जाय, तथा वैश्विक समस्याओं का मुकाबला करने के लिए नये मित्रों तथा सहयोगियों की खोज की जाय। 1949 में चीन के पतन तथा मध्य एवम् पूर्वी यूरोप में दक्षिण एशिया से सम्बन्धित अमेरिकी जनमत मुख्य रूप से दो उद्देश्यों के पक्ष में था–प्रथम–सोवियत विरोधी तथा साम्यवाद विरोधी संघर्ष में मित्र देशों की तलाश करना, तथा द्वितीय–यह भी प्रयास करना की कोई क्षेत्रीय शक्ति उभरकर अमेरिकी सत्ता को चुनौती न दे पाये।(वर्ल्ड फोकस,1983) भारत–पाकिस्तान सम्बन्ध में अमेरिकी दृष्टिकोण मुख्यतः इन्हीं उद्देश्यों पर आधारित रहा। 'कभी उपेक्षा, कभी विशिष्ट रूचि और कभी दखलंदाजी' ये तीनों दक्षिण एशियाई क्षेत्र में अमेरिकी प्राथमिकताओं के अनुरूप समय–समय पर अमेरिकी दृष्टिकोण में परिलक्षित होते रहे।

भारत एवम् पाकिस्तान की स्वतंत्रता के पश्चात अमेरिकी दृष्टिकोण सर ओलफ कैरियों के 'Wells of power' सिद्धान्त के आधार पर निर्मित हुआ। इसमें कैरियों का निष्कर्ष था कि एक मुस्लिम पाकिस्तान, (जिसके शासक परम्परागत रूप से ब्रिटेन के मित्र थे) ब्रिटेन के लिए तथा पश्चिम के महत्वपूर्ण हितों के लिए एक हिन्दू गुटनिरपेक्ष भारत की तुलना में कहीं अधिक बेहतर थे।(वही) ओलाफ कैरियों के सिद्धान्त को अशंतः स्वीकार करने के बावजूद अमेरिकी जनमत भारत को सहयोगी बनाने के पक्ष में था क्योंकि भारत की शक्ति, तथा साम्यवाद के विरूद्ध अभियान में भारत की भूमिका पर उन्हें विश्वास था। परन्तु भारत ने अपनी विदेश नीति का प्रमुख आधार स्तम्भ, 'गुटनिरपेक्षता' को बना लिया, जो अमेरिकी हितों के पूर्णतया प्रतिकूल था। दूसरी तरफ पाकिस्तान, (जो शीतयुद्ध से उत्पन्न संभावनाओं का अधिकतम दोहन करने के लिए प्रारंभ से ही व्यग्र था, जिससे कि वह अपनी सैन्य तथा राजनीतिक शक्ति भारत के समान कर सके) ने 'गुटबद्धता' की नीति अपनायी। पाकिस्तान की यह नीति शीतयुद्धकालीन अमेरिकी हितों के अनुकूल थी। इसलिए अमेरिकी जनमत भारत के विरोध में तथा पाकिस्तान के समर्थन में निर्मित हुआ। इसी जनमत के दबाव में अमेरिका ने पाकिस्तान को उचित–अनुचित प्रत्येक स्थान पर राजनैतिक, आर्थिक, सैन्य इत्यादि सभी तरह की सहायतायें उपलब्ध करायी।

भारत–पाकिस्तान सम्बन्ध पर अमेरिका का 1947 से 1971 तक स्पष्टतः यह दृष्टिकोण रहा कि 'इन दो पड़ोसियों के तनावपूर्ण सम्बन्ध ही अमेरिकी हितों के अनुकूल हैं, क्योंकि केवल इन्हीं परिस्थितियों में दक्षिण एशियाई क्षेत्र में अमेरिका उपस्थित रह सकता था, जहां से यह अपने प्रतिद्वन्दी सोवियत संघ तथा चीन पर नजर रख सकता था। इसी कारण उसने भारत–पाकिस्तान के सम्बन्ध के किसी भी मुद्दे पर पक्षपाती दृष्टिकोण रखा। प्रारंभ में इन्हीं दृष्टिकोणों के कारण अमेरिका ने पाकिस्तान को 'सीटों' तथा 'सेन्टो' जैसी सैनिक संधियों का सदस्य बनाया, तथा भारी मात्रा में सैन्य सामग्री भी प्रदान किया।(व्यूप्वांइट, लाहौर,1973) अपने 'प्रतिरोधन नीति' के तहत अमेरिका ने पाकिस्तान को 1954 से 1965 के बीच भारी मात्रा में सैनिक, आर्थिक तथा अन्य सहायतायें उपलब्ध कराता रहा। इस अवधि के दौरान 630 मिलियन डालर के सैन्य हथियारों के लिए सहायता, 619 मिलियन डालर की सुरक्षा सहायता, तथा 55 मिलियन डालर की सहायता, सैन्य उपकरण खरीदने के लिए दी गयी।(अस्थाना,1999,पृ0288)

शीतयुद्ध, अमरीका तथा भारत–पाकिस्तान सम्बन्ध

शीतयुद्ध के परिप्रेक्ष्य में पाकिस्तान को प्राप्त इन हथियारों ने भारत तथा पाकिस्तान के तनावपूर्ण सम्बन्धों को और भी जटिल बना दिया क्योंकि पाकिस्तान को न तो साम्यवादी शक्तियों से कोई खतरा था और न ही पाकिस्तान को दिये जाने वाले ये हथियार सोवियत संघ और चीन के विरूद्ध उपर्युक्त हो सकते थे। ये हथियार उन पहाड़ी क्षेत्रों के लिए उपर्युक्त न थे जहां इन देशों के विरूद्ध युद्ध लड़े जाते।(मेनस्ट्रीम,28 अगस्त 1982,पृ010.12) निश्चय ही इन हथियारों का लक्ष्य पाकिस्तान के लिए भारत ही हो सकता था। वास्तव में विभाजन का इतिहास, साम्प्रदायिक समस्या तथा कश्मीर का भारत में विलय इत्यादि पाकिस्तान के अस्तित्व के लिए बड़े संकट बनकर उभरे थे। इसलिए भारत के वृहद आकार तथा उसकी मजबूत सैन्य शक्ति का मुकाबला करने के लिए ही पाकिस्तान ने अमेरिकी सैन्य सहायता का उपयोग किया।

1962 के भारत–चीन युद्ध के समय भी अमेरिकी दृष्टिकोण पाकिस्तान परस्त रहा। यद्यपि उसने इस युद्ध के दौरान भारत पर पाकिस्तान को आक्रमण करने से रोका तथा इस संघर्ष में चीन के विरूद्ध भारत को सहायता भी प्रदान करायां,(मेनस्ट्रीम,10जुलाई1982 पृ013.15) परन्तु बदले में कश्मीर के संदर्भ में पाकिस्तान को कई बड़ी छूटें दिलवाकर उसके प्रति अपने समर्थन का भी प्रदर्शन किया। कश्मीर के संदर्भ में इस अमेरिकी दृष्टिकोण ने पाकिस्तान की गलत नीतियों को मान्यता दी जो इसे और भी अधिक उलझाने के लिए उत्तरदायी रहीं।

1965 के भारत–पाकिस्तान के युद्ध के दौरान अमेरिकी दृष्टिकोण में तटस्थता परिलक्षित हुई इस युद्ध के समय चीन ने अपने नये मित्र पाकिस्तान पर सैनिक दबाव कम करने के उद्देश्य से 17 सितम्बर,, 1965 को भारत को एक धमकी भरा 'अल्टीमेटम' भेजा। जिसमें भारत से यह मांग की गयी थी कि वह तीन दिनों के अन्दर गैर कानूनी ढंग से चीनी क्षेत्र में बनाये गये सैनिक अड्डों को तोड़ दे। शीघ्र ही उसने सीमा पर भारत के विरूद्ध सैनिक गतिविधि प्रारंभ कर दी। चीन की इस कार्यवाही में परिस्थिति बहुत जटिल हो गयी थी। इस हालत में अमेरिकी दृष्टिकोण भारतीय पक्ष में दिखायी दिया। अमेरिकी विदेश सचिव ने यह घोषणा की कि ''यदि चीन ने भारत के विरूद्ध कोई सैनिक कार्यवाही की तो अमेरिका भारत को किसी तरह की सहायता देने से संकोच नहीं करेगा।''(वर्मा,1992 पृ029) अमेरिकी दृष्टिकोण में ऐसा आभास हुआ कि वह तटस्थता पर अवलंबित होगा, परन्तु भारतीय प्रधानमंत्री की अमेरिका वार्ता को स्थगित कर अमेरिका ने अपने पूर्ववत दृष्टिकोण की पुष्टि कर दी।

1971–72 के बांगलादेश संकट के समय भी अमेरिकी दृष्टिकोण पूर्ववत् बना रहा। इस संकट के समय अमेरिकी विदेश सचिव हेनरी किसिंजर ने पाकिस्तानी सैन्य शासक जनरल याह्या खां के दमनकारी कृत्यों का समर्थन किया और बंगाल की खाड़ी में सातवे बेड़े को भेजने का निर्णय कर पाकिस्तान की युद्धकारी मानसिकता को प्रोत्साहन दिया। इससे भी यह स्पष्ट हुआ कि अमेरिकी दृष्टिकोण में भारत–पाकिस्तान सम्बन्ध की कोई अहमियत नहीं है अपितु उसकी समस्य नीतियां दोनों देशों के मध्य विभिन्न समस्याओं को बरकरार रख कर अपने हित साधन के पक्ष में हैं।

वास्तव में अमेरिका की यह सोच थी कि वह दक्षिण एशिया में अपने सामरिक हितों को केवल पाकिस्तान के बूते पर ही साध सकता है और इसलिए उसने भारत–पाकिस्तान सम्बन्ध के किसी भी मुद्दे पर पाकिस्तान का पक्षपोषण किया। अमेरिका पाकिस्तान को सहयोग देने के लिए प्रतिबद्ध था और उसने उसे आश्वासन भी दिया था कि किसी भी आक्रमण की स्थिति में वह, उसकी सहायता करेगा, परन्तु फिर भी उसका दृष्टिकोण पूर्णतया अपने राष्ट्रीय हितों से आबद्ध रहा। अपने इसी आबद्धता के कारण अमेरिका ने कभी–कभी भारत–पास्तिान सम्बन्ध में दोनों ही पक्षों से 'अनाशक्ति' का प्रदर्शन भी किया।

इस कालखण्ड में अमरीका का दृष्टिकोण भारत–पाकिस्तान सम्बन्ध को उलझाये रखने का था इसीलिए जब वह किसी एक पक्ष की ओर झुकता तो उसी समय वह दूसरे पक्ष के लिए भी घोषणायें कर देता था। किसी एक पक्ष के लिए घोषित किये गये कार्यक्रमों को दूसरे पक्ष के लिए घोषित किये गये कार्यक्रमों द्वारा संतुलित किया करता था।(सेमिनार,मार्च 2000 पृ018.25) कछ ऐसे भी वर्ष रहे जब, यह क्षेत्र अमरीकी वैश्विक हितों के अनुकूल न था और तब अमेरिका भारत या पाकिस्तान किसी से भी साझेदारी के लिए तैयार नहीं था। चीन में साम्यवादी क्रान्ति की सफलता तथा स्वयं अमेरिका के लिए खतरा उत्पन्न करने वाले स्टालिन के कारण अमेरिकी दृष्टिकोण में एक बार पुनः भारत एवम् पाकिस्तान महत्वपूर्ण हुए और उसने पाकिस्तान से समझौता भी किया। 1965 के युद्ध में अमेरिकी दृष्टिकोण में थोड़ी सी तटस्थता परिलक्षित हुई। इस युद्ध ने उसे यह दृष्टि दी कि वह दोनों देशों पर प्रतिबन्ध लगाये और इस क्षेत्र से निकल जाय परन्तु यह दृष्टि अत्यन्त क्षणिक सिद्ध हुई। अमेरिकी हित दक्षिण एशियाई क्षेत्र में टकराते रहे, परिणामस्वरूप अमेरिका ने पाकिस्तान से अपने आप को आबद्ध किये रखा यह आबद्धता 1971 के युद्ध में प्रदर्शित भी हुई।

वास्तव में शीतयुद्ध की बाध्यताओं के कारण अमेरिकी दृष्टिकोण पाकिस्तान को 'सोवियत समर्थित भारत' के विरूद्ध संतुलनकारी शक्ति के रूप में बढ़ावा देने की रही, लेकिन 1971 के युद्धोपरान्त 'बंगलादेश' के अभ्युदय ने अमेरिकी दृष्टिकोण में पुनर्विचार की आवश्यकता उत्पन्न कर दी। उन्हें ऐसा लगने लगा कि केवल पाकिस्तान के साथ सामरिक गठबंधन दक्षिण एशिया में अमेरिकी हितों के अनुकूल नहीं है।

इसी पुनर्विचार के परिणामस्वरूप भारत–पाकिस्तान सम्बन्ध पर अमेरिकी दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। उसने अपने आपको भारत–पाकिस्तान संबंध में तटस्थ रखने का प्रयास किया, ऐसा उसने अपने वैश्विक हितों के कारण किया था। अमेरिका के इस परिवर्तित दृष्टिकोण का काल 1971 से 1978 तक रहा। इस कालखण्ड में अमेरिका ने दोनों देशों के सम्बन्ध में 'पंश्चगामी नीति' का अनुपालन किया (थर्ड कान्सेप्ट,वाल्यूम2नं0125,जुलाई1997), एवम् भारत को एक प्रमुख शक्ति के रूप में स्वीकार किया। यह विडम्बना ही थी कि इस दौरान भारत–पाकिस्तान संबंध में अपेक्षाकृत 'शान्ति' और 'स्थिरता' बनी रही। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत–पाकिस्तान संबंध पर अमेरिकी दृष्टिकोण यदि तटस्थ रहता तो संभवतः दोनों राष्ट्रों के संबंध सामान्य हो सकते थे, परन्तु ऐसा संभव न हो सका।

अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप ने एक बार पुनः भारत–पाकिस्तान संबंध में अमेरिकी तटस्थता के दृष्टिकोण को परितवर्तित किया। अमेरिकी सोच यह बनी कि यदि सोवियत संघ अफगानिस्तान को जीत लेता है तो साम्यवाद का प्रभाव पूरे दक्षिण एशिया पर स्थापित हो जायेगा एवम् उसकी पहुंच पूरे हिन्द महासागर क्षेत्र में हो जायेगी। इन परिस्थितियों में अमेरिका को दक्षिण ऐशिया में एक सहयोगी की तलाश थी और सैन्य सत्ता के अन्तर्गत पाकिस्तान से बेहतर कोई और सहयोगी नहीं हो सकता था।

वास्तव में यह अमेरिकी वैश्विक हितों का टकराव तो था ही, साथ ही भारत–पाकिस्तान संबंध के संदर्भ में अमेरिकी दुर्भावना भी थी जो भारत–पाकिस्तान संबंध के दुर्भाग्य के रूप में परिलक्षित हुई। अफगानिस्तान संकट को किसी अन्य कारण का जो किसी अन्य स्थान पर हो रही थी, एक उत्प्रेरक एवम् स्पष्टीकरण माना(अस्थाना, पूर्वोद्धृत पृ0291) और इसकी आड़ में पाकिस्तान को भारी मात्रा में सैन्य सहायता प्रदान किया। 83.2 मिलियन डालर की सैन्य तथा आर्थिक सहायता ने भारत–पाकिस्तान के मध्य स्थापित शक्ति संतुलन को पूर्णतया ध्वस्त कर दिया। इसे पुनः स्थापित करने के लिए भारत को भारी मात्रा में हथियार एवम् सैन्य सामग्री खरीदने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस संकट के समय अमेरिका ने पाकिस्तान को एफ0–16विमान प्रदान किये, जिसने दक्षिण एशिया की सामरिक तकनीक में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया। एम0–48 तथा एम0–60 जैसे विध्वंसकारी टैंक अमेरिका ने इसी संकट की आड़ में पाकिस्तान को प्रदान किये जो 'खैबर दर्रे' में तैनाती के कदाचिद उपयुक्त नहीं थे। इसी अवधि में पाकिस्तान को अमेरिका ने 'हरपून' मिसाइल दिया जिसके पीछे उसने निराधार तर्क दिया कि ''अफगानिस्तान ने चोरी छिपे नौसेना विकसित कर लिया है। इसलिए अमेरिका को पाकिस्तान को यह मिसाइल देने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है।''(हिन्दुस्तान टाइम्स, 18नव0,1997) वास्तव में इन सारी सैन्य सामग्रियों का प्रयोग पाकिस्तान ने अपनी सैन्य क्षमता बढ़ाने में किया। जिससे भारत को भी सैन्य प्रतिस्पर्धा में भाग लेना पड़ा और दोनों देशों के संबंधों के सामान्यीकरण की आशा क्षीण हो गयी। इस प्रकार अमेरिकी दृष्टिकोण ने एक बार फिर भारत–पाकिस्तान सम्बन में दूरी में वृद्धि ही किया।

वास्तविकता यह है कि भारत–पाकिस्तान संबंध पर विश्व जनमत अपने किसी भी स्वरूप में संबंधों की वास्तविकता के आधार पर कभी भी निर्मित नहीं हुए और न ही उन्होंने कभी भी इन दोनों देशों के संबंधों की जटिलताओं को समझने का प्रयत्न ही किया। आज विश्व लोकमत स्पष्टतः राष्ट्रीय हितों पर आधारित होता है और भारत–पाकिस्तान के संदर्भ में यही हुआ। यदि केवल इतना ही हुआ होता तो निश्चय ही अमेरिकी दृष्टिकोण भारत–पाकिस्तान संबंध को सकारात्मक दिशा तो नहीं देती, परन्तु साथ ही इसकी नकारात्मक प्रवृत्तियां भी दृष्टिगत नहीं होतीं, परन्तु भारत–पाकिस्तान सम्बन्ध के संदर्भ में अमेरिकी दृष्टिकोण मुख्यतः शीतयुद्ध की नीतियों पर अवलंबित रहा, जिसकी वजह से भारत–पाकिस्तान संबंधों में समय–समय पर और अधिक कटुता परिलक्षित हुई।

कश्मीर समस्या और अमरीकी दृष्टिकोण

'कश्मीर समस्या भारत–पाकिस्तान संबंध में सर्वाधिक विध्वंसकारी रही है। इसके उदय से लेकर अब तक इसके समाधान के लिए अनेकों प्रयास भी किये गये हैं। जो आज तक केवल असफलता की ही कहानी कहते हैं। इन असफलताओं का भी एक कारण विश्व लोकमत का बँटा होना रहा है। वास्तव में कश्मीर समस्या का उद्भव ही विश्व लोकमत के अमेरिकी दृष्टिकोण को आत्मसात करने वाले देश ब्रिटेन की वजह से हुआ था और बाद में भी अमेरिकी नेतृत्व प्राप्त विश्व लोकमत कभी भी इस समस्या पर गंभीर न हो सका। विश्व लोकमत के इस पक्ष ने कश्मीर समस्या की वास्तविकता को जानने का प्रयास नहीं किया और न ही विश्व लोकमत के मूर्त रूप, संयुक्त राष्ट्र संघ को इस मामले पर कोई न्यायपूर्ण निर्णय ही लेने दिया।

कश्मीर समस्या पर अमेरिकी दृष्टिकोण सदैव शीतयुद्ध की नीतियों से प्रभावित होता रहा। शीतयुद्ध में अपना साझेदार होने के कारण 'मनसा, वाचा, कर्मणा' वह पाकिस्तान की गलत सही नीतियों का समर्थन करता रहा। वह इस समस्या का पाकिस्तान की इच्छा के अनुकूल हल चाहता था, जिसमें जनमत संग्रह, राष्ट्रीय आत्मनिर्णय मानवाधिकार उल्लंघन तथा समस्या के निबटारे में विदेशी फौजों का उपयोग जैसी चीजें शामिल हों। इस दृष्टिकोण के विश्व लोकमत के समर्थक राष्ट्रों (अमेरिका तथा अन्य) ने कश्मीर समस्या के समाधान के लिए उत्सुकता तो जतायी, परन्तु 'आक्रान्त' और 'आक्रान्ता' का निष्पक्ष निर्णय देने के लिए वे कभी तैयार नहीं हुए।(मेनस्ट्रीम, 7 नव0 1981 पृ09) वे निरन्तर संयुक्त राष्ट्र संघ और संयुक्त राष्ट्र संघ के बाहर 'कश्मीर समस्या' को भारत एवम् पाकिस्तान के मध्य द्विपक्षीय समस्या मानने से इंकार करते रहे।

आतंकवाद और अमरीकी दृष्टिकोण

भारत–पाकिस्तान संबंध में 'आतंकवाद' एक गंभीर समस्या है। इस मुद्दे पर भी अमेरिकी दृष्टिकोण बहुत स्पष्ट नहीं रहा। आतंकवाद को 'पाकिस्तानी प्रायोजन' एक सच्चाई है जिसे उसने जान बूझकर नजर अंदाज किया। एक तरफ उसकी नीति आतंकवाद को परिभाषित करने में अड़गें–बाजी की रही तो दूसरी तरफ पाकिस्तान जैसे देशों को इस सन्दर्भ में सहायता उपलब्ध कराना भी उसकी नीति रही। ''एक तरफ तो वह इस्लामी आतंकवाद से लड़ने के लिए इजराइल को खुले दिल से हर संभव सहायता उपलब्ध कराता रहा तो दूसरी तरफ विभिन्न लिखित दस्तावेज होने के बावजूद यह पाकिस्तान को आतंकवादी

राष्ट्र घोषित करने में हिचकता रहा।(इण्डिया क्वार्टर्ली, 11 सित02001,पृ07)

पाकिस्तान की शक्तिशाली संस्था आई0एस0आई0 जिसे पाकिस्तानी सेना का आंख व कान कहा जाता है तथा जिसके हरकत–उल–अंसार तथा लश्कर–ए–तैयबा जैसे आतंकवादी संगठनों से करीबी संबंध है और जो भारत में आतंकवाद को प्रायोजित कराने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। उसे भी अमेरिका ने समर्थन प्रदान किया तथा अपने खुफिया एजेंसी सी0आई0ए0 के साथ कार्य करने का अवसर प्रदान किया।(दी टाइम्स ऑफ इण्डिया, 25 सितम्बर 2001)

नाभिकीय कार्यक्रम और अमरीकी दृष्टिकोण

नाभिकीय कार्यक्रम भारत–पाकिस्तान के बीच विवाद का एक और कारण रहा है। यद्यपि इस नाभिकीय कार्यक्रम के संदर्भ में अमेरिका का घोषित दृष्टिकोण यह रहा कि वह नाभिकीय तकनीक के सैन्य अथवा नागरिक स्तर के विकास को रोके तथा अपनी नाभिकीय प्रभुसत्ता को विश्व स्तर पर बरकरार रखे। दक्षिण एशिया के बारे में उसका विचार था कि इन परमाणु विहीन राज्यों के हाथों में परमाणु हथियार पड़ जाने पर इनके प्रयोग की संभावना, परमाणु शस्त्र क्षमता प्राप्त देशों की तुलना में कहीं अधिक रहेगा। इसलिए उसने भारत–पाकिस्तान के परमाणु कार्यक्रमों पर चिंता भी व्यक्त की और इन्हें परमाणु अप्रसार उद्देश्यों की सूची में सर्वोपरि स्थान प्रदान किया। यद्यपि परमाणु कार्यक्रम पर अमेरिका की घोषित नीति अप्रसार के प्रति समर्पित रही तथापि उसने इस मुद्दे पर भी पाकिस्तान तथा ईजराइल जैसे अपने साझेदारों की तरफ से आंखें मूंद लीं।(मेनस्ट्रीम,28जुला 1989) अपना सामरिक साझेदार बना लेने के बाद पाकिस्तानी परमाणु कार्यक्रम में हस्तक्षेप की अमेरिकी दृष्टिकोण की अपेक्षा भी नहीं की जा सकती। वंदना अस्थाना ने लिखा है कि ''अफगान समस्या के दौरान अमेरिका पाकिस्तान पर इस डर से दबाव नहीं डालता था कि इसके प्रतिरोध स्वरूप पाकिस्तान, अफगान, मुजाहिद्दीनों के लिए रास्ता देना बंद कर देगा।'' वास्तव में अमेरिका के राजनीतिक तथा सुरक्षा हित उसके नाभिकीय अप्रसार दृष्टिकोण को तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे। पाकिस्तान का नाभिकीय कार्यक्रय भारत–पाकिस्तान संबंध में नकारात्मक भूमिका का निर्वहन कर रहा था, परन्तु अमेरिका के हितों के लिए कहीं न कहीं साधक था इसलिए अमेरिकी दृष्टिकोण पाकिस्तान परस्त बना रहा।

प्रारंभ से लेकर 80 के दशक तक भारत–पाकिस्तान संबंध में अमेरिकी दृष्टिकोण मुख्यतः तीन रूपों में परिलक्षित हुआ। 1947 से 1971 तक के कालखण्ड में उसके दृष्टिकोण में भारत–पाकिस्तान संबंध की वास्तविकताओं से कोई मतलब नहीं था उसके इस संदर्भ में दृष्टिकोण में 'शीतयुद्धकालीन राष्ट्रीय हितों'' ने अभिव्यक्ति पायी और पाकिस्तान से हित साधने के कारण वह प्रत्येक स्तर से पाकिस्तान की सहायता करता रहा। शीतयुद्ध की विवशताओं तथा अपनी स्थिति मजबूत रखने के लिए अमेरिका की दक्षिण एशिया में उपस्थिति अनिवार्य थी और यह तभी संभव था जबकि भारत–पाकिस्तान संबंध तनावपूर्ण रहते। इसके लिए अमेरिकी दृष्टिकोण इस क्षेत्र में भारत–पाकिस्तान को उलझाये रखने के पक्ष में रहा, जिसमें उसे सफलता भी प्राप्त हुई।

1971 से 1978 तक के कालखण्ड में अमेरिका ने भारत–पाकिस्तान संबंध के प्रति तटस्थता का रूख अपनाया। वास्तव में 1971 में बंगलादेश के अभ्युदय ने दक्षिण एशियाई सामरिक संरचना को पूर्णतया परिवर्तित कर दिया था। ऐसे में अमेरिकी दृष्टिकोण में परिवर्तन भी स्वाभाविक ही था। यह वही कालखण्ड था, जबकि भारत–पाकिस्तान संबंध में भी 'तनाव शैथिल्य' की अवस्था परिलक्षित हुई और दोनों देश 'शिमला समझौते' के आधार पर संबंधों को सामान्य बनाने का प्रयास कर रहे थे, लेकिन यह अवस्था अत्यन्त संक्षिप्त सिद्ध हुई, क्योंकि इसी समय अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में कुछ ऐसे परिवर्तन हुए जिनका प्रभाव इनके संबंधों पर पड़ना ही था। 1979 में अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप ने अमेरिकी दृष्टिकोण में एक बार पुनः दक्षिण एशिया को महत्वपूर्ण बना दिया। अमेरिकी दृष्टिकोण में इस तथ्य की अभिव्यक्ति हुई कि दक्षिण एशिया में उसे एक स्थाई मित्र की महती आवश्यकता है और उसने अपने पुराने मित्र पाकिस्तान से अपने मैत्री सम्बन्धों को पुनर्जीवित किया। अमेरिका का पाकिस्तान परस्त यह दृष्टिकोण लगभग एक दशक तक जारी रहा। इस कालखण्ड में भी अमेरिका का भारत–पाकिस्तान संबंध में घोषित दृष्टिकोण चाहे जो भी रहा हो, उसकी कार्यविधियों से यहीं परिलक्षित होता था कि वह इन देशों के संबंधों को सामान्य बनाने के लिए गंभीर नहीं है, अपितु इसके विपरीत संबंधों में कड़वाहट उत्पन्न कर अपने हितों को साधने की इच्छा रखता है।

शीतयुद्ध का अंत, भूमण्डलीकरण और अमरीकी दृष्टिकोण

1990 के दशक तक आते–आते अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में कई घटनायें घटी, सोवियत संघ का विघटन हुआ, शीतयुद्ध का अंत हुआ और भारत में आर्थिक उदारीकरण का रास्ता अपनाया गया। शीतयुद्ध के अंत के कारण भारत–पाकिस्तान संबंध के बारे में भी अमेरिकी दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन दिखायी दिये। यद्यपि तत्काल ही अमेरिका ने भारत–पाकिस्तान संबंध के सामान्यीकरण की दिलचस्पी तो नहीं दिखायी तथापि उसने इस दृष्टिकोण को त्याग दिया कि 'भारत–पाकिस्तान के दुराग्रहपूर्ण सम्बन्ध ही उसके हित में हैं।'अमेरिका का भारत–पाकिस्तान संबंध में परिवर्तित दृष्टिकोण तब दिखायी दिया जबकि उसने पहली बार यह स्वीकार किया कि पाकिस्तान में नाभिकीय बम बनाने की दिशा में कार्य चल रहा है। उसने इसकी आड़ लेकर 'प्रेसलर कानून' के अन्तर्गत पाकिस्तान को दी जा रही समस्याओं पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया। भारत–पाकिस्तान संबंध के तनावकारी

प्रत्येक बिन्दु पर उसका दृष्टिकोण बदला–बदला सा लगने लगा। वास्तव में शीतयुद्ध के बाद के प्रारंभिक वर्षों में अमेरिका ने भारत तथा पाकिस्तान दोनों को ही समान महत्व देने का दृष्टिकोण अपनाया।''(मेनन, पूर्वोद्धृत) अब अमेरिका इस क्षेत्र को 'शून्य योग खेल' वाली सोच के आधार पर नहीं देखता था और न ही दक्षिण एशिया के संबंध में उसका दृष्टिकोण 'कौन किसकों समर्थन करता है' की द्विध्रुवीय राजनीतिक सोच पर ही आधारित रहा। अपितु अब वह इस क्षेत्र के देशों को व्यक्तिगत गुणों के आधार पर देखने लगा।''

कश्मीर समस्या पर भी अमेरिकी दृष्टिकोण में परिवर्तन दिखायी दिया और उसने 1972 के शिमला समझौते को कश्मीर समस्या के हल के लिए आधार स्वरूप स्वीकार कर लिया,(वही) परन्तु अमेरिकी दृष्टिकोण का यह परिवर्तन सतही ही अधिक रहा। एक बार पुनः अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने 'कश्मीर समस्या' की तुलना अंगोला तथा काक्कस के नागरिक विद्रोह से किया। संयुक्त राष्ट्र संघ में अपने वक्तव्य में उन्होंने कहा कि ''कश्मीर वह क्षेत्र है जहां खूनी, जातीय, धार्मिक तथा गृहयुद्ध हुए है, वास्तव में यह विवादित क्षेत्र है जिसका हल कश्मीरियों की इच्छानुसार होना चाहिए।''(वही 12 जन 1998) अमेरिका ने यह भी घोषणा की कि कश्मीर समस्या को बातचीत द्वारा सुलझाया जाना चाहिए, इसके लिए यदि दोनों देश सहमत हों तो वह मध्यस्थता के लिए तैयार है। इस प्रकार भारत–पाकिस्तान संबंध पर अमेरिका दृष्टिकोण विरोधाभाषों से परिपूर्ण रहा। एक तरफ उसने यह स्वीकार किया कि कश्मीर द्विपक्षीय मसला है तो दूसरी तरफ उसने कश्मीरी लोगों की इच्छाओं एवम् मध्यस्थता की बात भी की।(वही 18 नव0 1997) यही नहीं पाकिस्तान को विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर कश्मीर एवम् मानवाधिकार जैसे मुद्दों को उठाने के लिए अमेरिका ने अभिप्रेरित भी किया है।(वही 7 दिस0 1998)

वास्तव में इस दशक में अमेरिका ने इनके सम्बंध के संदर्भ में कोई निश्चित दृष्टिकोण नहीं रखा। उसने इस दशक में यह प्रयास किया कि दोनों देशों के मध्य कोई शस्त्र संघर्ष न हो तथा अपने प्रभाव का इस्तेमाल करते हुए दोनों देशों को वार्ता की मेज पर बैठाने का प्रयास भी किया तथापि 'सत्यता का साथ देना' अब भी उसके दृष्टिकोण में सम्मिलित नहीं रहा। 1990 के बाद उसके दृष्टिकोण में दो प्रकार के हितों ने अभिव्यक्ति पायी 'आर्थिक हित और सामरिक हित'। शीतयुद्ध के उपरांत अमेरिका के आर्थिक हित प्रधान हो गये और सामरिक हित गौण। इसलिए जब कभी उसके आर्थिक हित साधन की बात होती है तो वह भारत के पक्ष में होता है और जब कभी भी सामरिक हितों की मांग होती है तो उसके दृष्टिकोण में अपने पुराने पाकिस्तान के प्रति 'हमदर्दी' साफ नजर आती है। 1990 से अब तक लगातार वह भारत–पाकिस्तान को इसी दृष्टि से देखता रहा है।

दक्षिण एशिया में अपने सामरिक तथा आर्थिक हितों के संतुलन के लिए अमेरिका का यह दृष्टिकोण रहा कि अब भारत–पाकिस्तान सम्बन्ध पूर्णतया मधुर तो नहीं अपितु सामान्य हो जाने चाहिए, क्योंकि इन्हीं परिस्थितियों में आकांक्षाओं की पूर्ति हो सकती है। इसके लिए उसने कई प्रयास किये। उसने दोनों देशों की सामाजिक तथा आर्थिक विकास के कार्यक्रमों में गहरी रूचि दिखायी है तथा आवश्यकता पड़ने पर उसने दोनों ही देशो का समान रूप से प्रतिबन्धित भी किया है। उसने इस दशक में भारत–पाकिस्तान के मध्य लम्बे समय से बंद पड़े वार्ताओं के क्रम को पुनः प्रारंभ करने के लिए दबाव डाला, जिसके परिणामस्वरूप, असफल ही सही, दोनों देशों के मध्य संवाद के दौर प्रारंभ हुए हैं। 1998 में दोनों देशों द्वारा परमाणु विस्फोट कर लिए जाने के बाद अमेरिका ने दोनों पर समान रूप से प्रतिबंध आरोपित किये तथा 1998 के ही क्लिंटन शरीफ वार्ता में क्लिंटन ने कश्मीर समस्या पर अमेरिकी मध्यस्थता के शरीफ के अनुरोध को स्वीकार नहीं किया।(अस्थाना, पुर्वोद्धृतपृ0303.306) इस पर अमेरिकी प्रवक्ता ने कहा कि ''हमारा यह विश्वास है कि समय–समय पर अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय, कश्मीर समस्या को द्विपक्षीय ढंग से ही निबटाया जाना चाहिए। यद्यपि कि भारत और पाकिस्तान दोनों देशों द्वारा नाभिकीय परीक्षण से इस भय को बल मिला है कि लम्बे समय से उलझा यह विवाद खतरनाक मोड़ ले सकता है।''(दैनिक जागरण, 5 दिस01998) 2 दिसम्बर, 1998 को ओवल कार्यालय में शरीफ का स्वागत करते हुए राष्ट्रपति श्री क्लिंटन ने भी यह दृष्टिकोण अभिव्यक्त किया कि अमेरिका, भारत'–पाकिस्तान संबंध सामान्य बनाने का इच्छुक तो है, परन्तु इसका रास्ता राष्ट्रीय सम्प्रभुता का उल्लंघन नहीं हो सकता। उन्होंने कहा कि ''मध्यस्थ की भूमिका में अमेरिका तभी प्रभावी हो सकता है, जबकि दोनों पक्ष इसके लिए सहमत हों ऐसा कभी नहीं हुआ कि हमने बिना दोनों पक्षों की सहमति के अपने आपकों किसी विवाद में डाला हो'।'(राष्ट्रीय सहारा,8 दिस01998)

'कारगिल संकट' के समय भी अमेरिकी दृष्टिकोण में यह आभाषित हुआ कि भारत–पाकिस्तान सम्बन्ध का सामान्य होना न केवल इन दोनों देशों के हित में है वरन स्वयं अमेरिका के भी हित में है। इसलिए बिल क्लिंटन ने इस संकट के समय एक सशक्त भूमिका का निर्वहन किया तथा कारगिल घटना के लिए स्पष्ट शब्दों में पाकिस्तान की आलोचना की, उन्होंने नवाज शरीफ पर कारगिल से अपनी सेनायें पीछे हटाने के लिए भी दबाव डाला जिसके कारण एक भीषण युद्ध से बचा जा सका। 'लाहौर प्रक्रिया' प्रारंभ कराने में भी निश्चित रूप से अमेरिकी दृष्टिकोण की आंशिक भूमिका थी। 11 सितम्बर, 2001, विश्व लोकमत के लिए एक अविस्मरणीय दिन था जिस दिन अमेरिका में वर्ल्ड ट्रेड सेंटर को आतंकवादियों ने ध्वस्त कर दिया। कुछ अपवादों को छोड़कर सम्पूर्ण विश्व ने इसे एक स्वर में मानवता के प्रति अपराध माना और इस घटना की निंदा की। ऐसा लगा कि

आतंकवाद के विरूद्ध विश्व समुदाय, संघर्ष करने के लिए तैयार है। अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश ने जब आतंकवाद के विरूद्ध संघर्ष का ऐलान किया तो भारतीयों को ऐसा लगा कि अमेरिका का भारत–पाकिस्तान संबंध में भी आतंकवाद पर दृष्टिकोण परिवर्तित था, यहां उसका सामरिक हित था, जिसने एक बार पुनः पाकिस्तान को आतंकवाद के प्रायोजक राष्ट्र होते हुए भी 'आतंकवाद के विरूद्ध संघर्ष' में भागीदार बनाया। अमेरिका दृष्टिकोण से यह आभास हो गया कि वह भारत–पाकिस्तान संबंध को केवल अपने राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से ही देखता है।

13 दिसम्बर, 2001 के संसद पर आतंकवादी हमले के बाद भी अमेरिकी दृष्टिकोण में यह बात परिलक्षित हुई कि उसके हित भारत के साथ–साथ पाकिस्तान से भी सधते हैं इसलिए उसने भारत के आर–पार के संघर्ष के आह्वान तथा स्वयं अपने आतंकवाद के विरूद्ध घोषित अभियान के बावजूद भारत को पाकिस्तान पर आक्रमण करने से रोकने के लिए दबाव बनाया। इससे एक ओर जहाँ उसने पाकिस्तान को प्रसन्न किया वहीं राजनयिक दबाव डालकर पाकिस्तानी राष्ट्रपति श्री परवेज मुशर्रफ से आतंकवाद की कार्यवाहियों से हाथ खींचने तथा आतंकवादी कृत्यों पर लगाम कसने की घोषणा कराके भारत को भी संतुलित करने का प्रयत्न किया।

निष्कर्ष

वास्तव में भारत–पाकिस्तान संबंध पर अमेरिकी दृष्टिकोण हितों से प्रभावित रहा है। प्रारंभ में भारत की गुटनिरपेक्षता के प्रति आस्था एवम् महाशक्तियों से दूर रहकर मुद्दों को तार्किक ढंग से लेने की सोच को जान फास्टर डलेस जैसे लोगों द्वारा अनैतिक एवम् इस क्षेत्र में अमेरिकी हितों के प्रतिकूल माना और अमेरिकी दृष्टिकोण भारत–पाकिस्तान संबंध पाकिस्तान की पक्षधरता से ग्रसित रहा। बाद के वर्षों में दृष्टिकोण यह रहा कि गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के सहसंस्थापक के रूप में भारत अमेरिकी हितों के लिए कार्य कर सकता है और तब उसने भारत–पाकिस्तान दोनों को समान महत्व देने की नीति अपनायी। पुनः नव शीतयुद्ध का अविर्भाव हुआ और अमेरिकी दृष्टिकोण में पाकिस्तान की पक्षधरता परिलक्षित हुई। शीतयुद्ध के बाद परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ। भारत एक आर्थिक शक्ति के रूप में उदित हुआ जबकि पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था बुरी तरह से चरमरा गयी। अमेरिकी बुद्धिजीवियों के संगठन विदेश संबंध परिषद ने यह घोषणा किया कि ''पाकिस्तान आज सामाजिक, राजनीतिक एवम् जातीय समस्याओं के कारण आर्थिक बरबादी की कगार पर है। राजनीतिक तनाव, शिया–सुन्नी गृह युद्ध की संभावना धार्मिक कट्टरतावाद तथा क्षेत्रवाद ये सभी उस बड़ी समस्या के कई बड़े रूप हैं। दशकों तक सुरक्षा तथा अनुत्पादक सैन्य क्षेत्र में बेतहासा खर्च की वजह से यह स्थिति आ गयी है कि पाकिस्तान के राजस्व का 75 प्रतिशत से अधिक हिस्सा ऋण का ब्याज चुकाने तथा सैन्य संबंधित खर्चों पर व्यय हो जा रहा है।'' जबकि भारत के संदर्भ में यह बताया गया कि ''भारत एक बड़ी शक्ति बनने की क्षमता रखता है यह एक ऐसा लोकतंत्र है जिसे अमेरिकी आर्थिक हितों के लिए काफी संभावनायें दिखायी देती है तथा जो पूरे एशिया को स्थायित्व प्रदान कर सकती है। अमेरिका को भारत के साथ एक वास्तविक, राजनीतिक साझेदारी की संभावनायें तलाश करनी चाहिए।'' इस प्रकार नब्बे के दशक में अमेरिकी दृष्टिकोण में इन विचारों ने अभिव्यक्ति पायी। अमेरिका को ऐसा लगा कि भारत–पाकिस्तान के सामान्य सम्बन्ध ही उसके हित में हैं और इसके लिए उसने जो दृष्टिकोण निर्धारित किया वह पूर्णतया निष्पक्ष तो नहीं परन्तु तात्कालिक आवश्यकताओं के अनुरूप अवश्य थे।

वास्तव में भारत–पाकिस्तान सम्बन्ध पर विश्व लोकमत मुख्य रूप से अमेरिकी, सोवियत संघ (रूस) और चीन के दृष्टिकोणों में अभिव्यक्त हुआ है। छोटे देशों का भी अपना अलग दृष्टिकोण रहा है, परन्तु उन्हें कभी स्वतंत्र अस्तित्व प्राप्त नहीं हो पाया। ये तीनों दृष्टिकोण अपने–अपने राष्ट्रीय हितों पर आधारित रहा है। भारत–पाकिस्तान सम्बन्ध से संदर्भित किसी भी घटना पर इन विश्व लोकमत इन्ही तीन दृष्टिकोणों में विभाजित रहा है। इन विभाजित दृष्टिकोणों ने भारत–पाकिस्तान सम्बन्धों को प्रभावित किया है। इनके कारण ही दक्षिण एशिया 'युद्ध, अशान्ती एवम् समस्याओं से भरा क्षेत्र' बन गया और इनके कारण ही भारत–पाकिस्तान की नीतिगत एकता ध्वस्त हो गयी है और इन दोनों देशों के बीच किसी साझा रक्षा सोच का अभाव हो गया है। वास्तव में भारत–पाकिस्तान सम्बन्ध पर विश्व लोकमत का अबतक स्वरूप नकारात्मक ही रहा है और विश्व लोकमत ने भी भारत पाकिस्तान सम्बन्ध को नकारात्मक ढंग से ही प्रभावित किया है।.... 21 वीं सदी की वर्तमान वास्तविकताओं में द्विपक्षीय सम्बन्धों की प्रबल आवश्यकता महसूस की जा रही है। ऐसे में भारत–पाकिस्तान दोनों को नये सिरे से अपने सम्बन्धों को बनाना होगा। मुक्त विश्व में नई आवश्यकताओं को देखते हुए दोनों को नये सिरे से प्रयस करने होंगे। यह तभी संभव है जब इस क्षेत्र में आधारभूत नीतिगत परिवर्तन हो और भारत पाकिस्तान दोनों इसके लिए सचेष्ट हों। इस नीतिगत परिवर्तन का रास्ता 'विश्व लोकमत; हो सकता है, लेकिन इसे स्वयं भी सत्य और असत्य में अन्तर करना होगा। विश्व लोकमत, पाकिस्तान पर भारत के करीब आने के लिए दबाव डाल सकता है और साथ ही भारत की पीड़ाओं (कश्मीर एवम् आतंकवाद पर) को समझकर उस पर स्पष्ट दृष्टिकोण अभिव्यक्त कर भारत को भी पाकिस्तान से मैत्री के लिए अभिप्रेरित कर सकता है।

सन्दर्भ

मारगेन्थाऊ, हांस जे0 (1967) *पॉलिटिक्स अमंग नेशन्स,* अनुवादित, कुरूक्षेत्र, कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय

अस्थाना, वन्दना (1999) *इण्डियाज फॉरेन पॉलिसी एण्ड सबकान्टिनेंटल पॉलिटिक्स*, नई दिल्ली, स्टर्लिंग

नारायन, के के : इण्डो यू0एस0 रिलेशन्स, *मेनस्ट्रीम,*10 जुलाई 1982,

राजामोहन,सी दी एसियन वैलेन्स ऑफ पॉवर, *सेमिनार,* मार्च 2000 नई दिल्ली, जुलाई 1997

आलम, ए यू एस पॉलिसी इन इण्डो पाक रिलेसन्स, *थर्ड कान्सेप्ट,* वाल्यूम **02** नं0 **125**

मेनन, एस सीः यू0एस0 रोल इन साउथ एशिया, *हिन्दुस्तान टाइम्स,* नई दिल्ली,18 नव0 1997

सुब्रमण्यम,के : यू0 एस0 वर्ल्ड एण्ड इण्डिया, *मेनस्ट्रीम,* 7 नव0 1981 पृ09

चौधरी, एल के : दी यूनाइटेड स्टेट एण्ड टेररिज्म पोस्ट 11 सितंम्बर2001 सिन्ड्रोम, *इण्डिया क्वार्टर्ली,* दिल्ली वाल्यू0 **57** नं0 **4**

एडविन मार्क : वन्स अगेन यू0एस0 नीड्स आईएसआई हेल्प इन अफगानिस्तान, *दी टाइम्स ऑफ इण्डिया,* 25 सितम्बर 2001

निलोफर, सुहारावर्दी : यू0एस0एड एण्ड पाकिस्तान न्यूक्लियर पॉलिसी, मेनस्ट्रीम 28 जुलाई 1989